द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ३

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

आलिंगणयं (आलिंगनक) छंद

किरिआ विहि संचिअकम्मकिलेस विमुक्खयरं;
अजिअं निचिअं च गुणेहिं महामुणि सिद्धिगयं.
अजिअस्स य संति महामुणिणोवि अ संतिकरं;
सययं मम निव्वुइ कारणयं च नमंसणयं. आलिंगणयं....५

मागहिया (मागधिका)

पुरिसा जई दुक्खवारणं, जई अ विमग्गह सुक्खकारणं;
अजिअं संतिं च भावओ, अभयकरे सरणं पवज्जह. मागहिया....६

-: शब्दार्थ :-

किरिआ विहि - क्रिया के विधिभेद से
संचिअकम्म - संचित किये / कर्म से हुए
किलेस - क्लेशों से
विमुक्खयरं - छुडानेवाले
अजिअं - नहीं जीता हुआ
निचिअं - व्याप्त
गुणेहिं - गुणों से
महामुनि - बडे मुनिओं की
सिद्धि - सिद्धि
गयं - जिससे प्राप्त होती है
अजिअस्स - अजितनाथ भगवान का
संति महामुणिणोवि - शांति नाम के महामुनि का भी
संतिकरं - विघ्न की शांति करने वाला
सययं - सतत / हमेशा
मम - मेरा
निव्वुई - मोक्ष का
कारणयं - कारणरुप
नमंसणयं - नमस्करण
पुरिसा - हे पुरुषो
जइ - जो तुम
दुक्खवारणं - दुःख का निवारण
विमग्गह - ढूंढ रहे हो
सुक्खकारणं - सुख का कारण
अजिअं - अजितनाथ को
संतिं - शांतिनाथ को
भावओ - भाव से
अभयकरे - अभय करने वाले
सरणं - शरण
पवज्जह - प्राप्त हो

गाथार्थ : कायिकादिक पच्चीस क्रिया की विधि से (भेद से) एकत्रित किये गये कर्म के क्लेशों से छुडानेवाले तथा अन्य दर्शनीयो से नहीं जीते जाएं ऐसे व सम्यक ज्ञानादि गुणों से व्याप्त, महा मुनिओं की सिद्धिओं को प्राप्त कराने वाला ऐसा श्री अजितनाथ का और महामुनि ऐसे शांतिनाथ का भी सतत (निरंतर) नमस्करण (नमन) मेरे विघ्नों की शांति करने वाला और मोक्ष के कारण रुप हो ।

हे पुरुषो, जो तुम दुःखो का निवारण तथा सुखों का कारण ढूंढ रहे हो तो भाव से श्री अजितनाथ तथा शांतिनाथ के अभय करने वाले शरण को प्राप्त करो ।

संगययं (संगतक) छंद

अरइरइतिमिर विरहिअ मुवरय जरमरणं;
सुरअसुर गरुल भुयगवई पयय पणिवईयं.
अजिअमहमविअ सुनयनय निउणमभयकरं;
सरणमुवसरिअ भुवि दिविज्ज महिअं सययमुवणमे संगययं.....७

सोवाणयं (सोपानक) छंद

तंच जिणुत्तम मुत्तम नित्तम सत्तघरं;
अज्जव मद्दव खंति विमुत्ति समाहिनिहिं.
संतिकरं पणमामिदमुत्तमतित्थयरं;
संति मुणी मम संति समाहिवरं दिसउ. सोवाणयं....८

-: शब्दार्थ :-

अरइ रइ - अरति रति रुप
तिमिर - अज्ञान के अंधकार से
विरहिअं - रहित
उवरयजरमरणं - जिनके जरा और मृत्यु विराम पा गये हैं
सुर असुर - सुर- असुर
गरुल - सुवर्ण कुमार
भुयग - नागकुमार
वई - उनके पति इन्द्र
पयय - तत्पर हो कर
पणिवइयं - प्रणाम किये गये
अजिअं - श्री अजितनाथ भगवान को
अहं - मैं
अविअ - और भी
सुनय - अच्छे नैगमादिक नय की
नय - प्रतीति
निउणं - उसमें निपुण
अभयकरं - अभय को करनेवाले
सरणं - शरण को
उवसरिअ - पाकर
भुविज - मनुष्यो
दिविज - देवताओ द्वारा
महिअं - पूजित
सययं - हमेशा / निरंतर
उवणमे - समीप नमस्कार करता हूँ
तं - वे
जिणुत्तम - सामान्य केवली में उत्तम
उत्तम - प्रधान
नित्तम - अज्ञान रहित
सतधरं - स्वभाव को धारण करनेवाले
अज्जव - सरलता
मद्दव - कोमलता निराभिमानीता
खंति - क्षमा
विमुत्ति - निर्लोभता
समाहि - समाधि
निहिं - भंडार रुप
संतिकरं - शांति करने वाला
पणमामि - मैं प्रणाम करता हूँ
दमुत्तम - इन्द्रियों का दमन करने में उत्तम
तित्थयरं - तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले (तीर्थंकर)
संति मुनि - शांति नाम के मुनि
मम - मुझे
संति समाहिवरं - शांति और समाधि रुप वरदान
दिसउ - दिजिए

गाथार्थ : अरति तथा रतिरुप अंधकार से रहित, जरामरण से वर्जित, सुर/वैमानिक, असुर/भुवनपति, सुवर्णकुमार, नागकुमार देवताओं के पति ऐसे इन्द्रो द्वारा प्रणाम किये गये, तथा नैगमादिक नय की प्रतीति में निपुण अभय करनेवाले और मनुष्यों तथा देवताओं द्वारा पूजित श्री अजित भगवान का शरण पाकर हमेशा उनके समीप मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ७

सामान्य केवलीओ में उत्तम / प्रधान ऐसे अज्ञान रहित स्वभाव को धारण करने वाले, सरलता, निराभिमानीता, क्षमा निर्लोभता और समाधि के भंडाररुप, शांति करनेवाले, इन्द्रियों का दमन करने में उत्तम, तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले, शांतिनाथ भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। हे शांति मुनि / भगवान मुझे शांति तथा समाधि का वरदान दो ८

श्री अजितनाथ
भगवान

श्री शांतिनाथ
भगवान

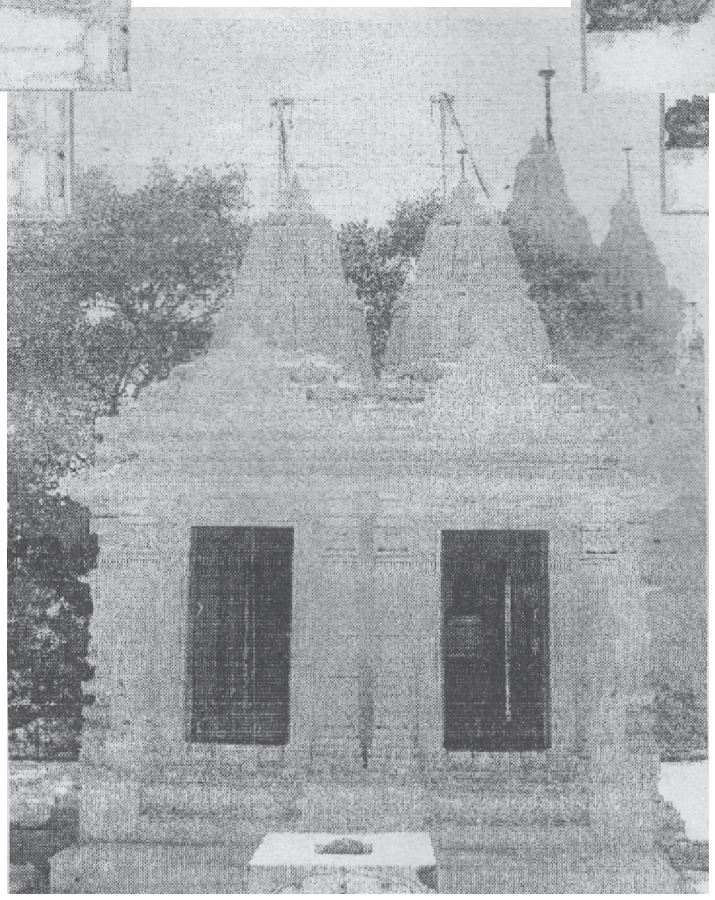

श्री अजित - शांतिकी देरी

श्रीगणधरवाद

२) श्री अग्निभूति गौतम

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

श्री इन्द्रभुति गौतम के छोटे भाई एवं वसुभूति पिता तथा पृथ्वीमाता के दूसरे पुत्र के रुप में उनका पूरा नाम श्री अग्निभूति वसुभूति गौतम था, गौतम उनका गौत्र था और पृथ्वीदेवीमाता ने कृतिका नक्षत्र में जन्म दिया था । ज्येष्ठभ्राता श्रीइन्द्रभूति से वे चार वर्ष छोटे थे । अपने भाई तथा पिता के नक्शे कदम पर चलकर उन्होंने १४ विद्याओ का अभ्यास किया और वेदवेदांत आदि शास्त्रो के पारंगत विद्वान हुए ।

गृहवास के समय में ही उनकी कीर्ति उनके बडे भाई की तरह चारो ओर प्रसारित थी, अनेक वादो में विजेता बनकर उन्होने भी वादी -विजेता की उपाधि प्राप्त की थी । अध्ययन - अध्यापन कराते श्री अग्निभूति पंडित का भी ५०० शिष्यों का बडा परिवार था, सोने की थाली में लोहे की कील की तरह ऐसे धुरंधर विद्वान के मन में एक शंका हुई, वेद, वेदान्त का अभ्यास करते-करते कुछ श्लोको का अर्थ व्यवस्थित नहीं बैठा इसलीये **''कर्म है या नहीं ?''** ऐसी शंका मन में दृढ हो गयी थी, कर्म नाम की कोई सत्ता है ही नहीं । अमूर्त ऐसी आत्मा को मूर्त कर्म कैसे लग सकते है ? फिर कर्म कभी नजर ही नहीं आते, तो भी कर्म मानने ही किसलिये ? इस तरह से कर्म नहीं है की शंका बहुत प्रबल रुप से उनके मन में घर कर गयी थी ।

इन्द्रभुति ने दीक्षा ले ली, यह बात सुनकर अग्निभूति ने विचार किया कि अग्नि शीतल हो सकती है, पवन स्थिर हो सकती है, पत्थर का पर्वत पिघल सकता है, हिम का समूह सुलग जाय, यह सब कदाचित संभव हो सकता है पर मेरा भाई इन्द्रभूति हार जाय यह संभव ही नहीं है, ऐसा विचार कर रहे अग्निभूति ने समवसरण में से वापस लौटकर आये लोगों के मुख से भाई ने दीक्षा ली, जानकर अभिमान पूर्वक सोचा कि मैं वहां शीघ्रता से जाकर मेरे बडे भाई को उस धुर्त को हराकर छुडा आऊं, ऐसा निर्णय कर वे अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यो के साथ जल्दी-जल्दी समवसरण में आये । तब वीर प्रभु ने उनके चित में रहे हुए संदेह को प्रकट करते हुए कहा कि, **''हे अग्निभूति ! तुझे कर्म है या नहीं ?''** ऐसा संदेह है और वो वेद के पदो से ही हुआ है, तू इन वेद के पदो का अर्थ बराबर समझा नहीं है । **''पुरुष एवेदंग्नि सर्वयद्भूतं यच्चभाव्यम् ''** इत्यादि वेद पद से तू जानता है कि जो हो गया है और जो होने वाला है वो सब आत्मा ही है, इसलीये इस वेद पद से जो ये मनुष्य, देवता, तिर्यंच, पर्वत, पृथ्वी वगैरह नजर पडते है वो सब आत्मा को मूर्तिमंत (रुपी) ऐसे कर्म से अनुग्रह एवं उपघात कैसे संभव है ? जैसे अमूर्त ऐसे आकाश को मूर्त ऐसे चंदन का विलेपन नहीं हो सकता तथा मूर्त ऐसे शस्त्र से भी खंडित नहीं किया जा

सकता, वैसे ही अमूर्त ऐसी आत्मा का मूर्तिमंत ऐसे कर्म से उपकार या अपकार हो ही नहीं सकता इसलिये कर्म जैसी कोई वस्तु ही नहीं है, ऐसा तू मानता है, वो बराबर नहीं हैं, कारण कि, वेदपद तीन प्रकार के है, कितने तो विधि बताने वाले वेदपद है जैसे कि **''स्वर्गकामो अग्निहोत्र जुहुयात''** स्वर्ग की इच्छावाले को अग्निहोत्र करना चाहिये, वैसे कुछेक वेदपद अनुवाद दर्शानेवाले है जैसे कि **''द्वादशमासाः - संवत्सरः''** बारह मास का एक वर्ष होता है, तथा कुछेक वेदपद स्तुति दर्शानेवाले है जैसे कि **''पुरुष एव इदं सर्व''** यह विश्व पुरुषरुप है, इस उपरोक्त पद से पुरुष का महिमा बताया गया है, परंतु इस पद से कर्म का अभाव नहीं बताया क्योंकि -

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वत मस्तके
सर्व भूतमयो विष्णु - स्तस्माद्विष्णुमयं जगत् ।।१।।

जल में विष्णु, स्थल में यानि भूमिपर विष्णु, पर्वत की चोटी के उपर भी विष्णु है, तथा विष्णु सर्वभूत जीवमय है, इसलीये यह जगत ही विष्णुमय है, परंतु इस पद से दूसरी किसी भी वस्तु का अभाव नहीं बताया है । इसी तरह से **''पुरुष एव इदं सर्व''** इस वाक्य में भी आत्मा की स्तुति की गयी है, इससे कर्म का अभाव मानना नहीं, फिर तू मानता है कि अमूर्त आत्मा को मूर्तिमंत ऐसे कर्म से अनुग्रह या उपघात कैसे संभव है ? यह भी तेरी मान्यता बराबर नहीं है, कारण कि मूर्तिमंत ऐसी ब्राम्हि जैसी औषधियों से तथा घी-दूध वगैरह सात्विक पदार्थो से अनुग्रह एवं मदिरा आदि पदार्थो से उपघात, अमूर्त ऐसे, ज्ञान को प्रत्यक्ष होते देखा गया है, इसलीये अमूर्त यानि अरुपी ऐसी आत्मा को मूर्तिमंत यानि की रुपी ऐसे कर्म से अनुग्रह व उपघात भी हो सकता है, फिर कर्म के बिना एक सुखी, एक दुःखी, एक सेठ, एक नौकर, एक राजा, दूसरा रंक वगैरह प्रत्यक्ष नजर आता विविधपना जगत में कैसे संभव है ? इस तरह वीर प्रभु के अमृतमय वचनो से उसका संशय दूर होने से अग्निभूति का अभिमान दूर हो गये । वो विनय भाव से झुक गये और वीर प्रभु के पास अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यों सहित दीक्षा लेकर शिष्य हो गये और प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की ।

अग्निभूति गौतम ने अपनी ४६ वर्ष की उम्र में श्री वीरप्रभु के पास दीक्षा ली, संसार छोडकर साधु बने । प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर भगवान के दूसरे मुख्य शिष्य एवं गणधर होने का सम्मान पाया, द्वादशांगी की रचना की, १४ पूर्वोका ज्ञान पाया । ४६ वर्ष की उम्र में दीक्षा लेकर २८ वर्ष का चारित्र पालन किया और उसमें भी वे १२ वर्ष तक छद्मस्थ रहे और १६ वर्ष तक सर्वज्ञ केवली रुप रह कर इस देश को पावन किया । ५८ वर्ष की उम्र में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बने थे । अनेक भव्यात्माओ का कल्याण कर वे ७४ वर्ष की आयुष्य भोगकर अंतिम समय में राजगृही पधारे एवं अंतिम एक मास की संलेषना कर भगवान महावीर की उपस्थिति में ही उन्हें प्राप्त वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थानवाले शरीर का सदा के लिये त्याग कर मोक्ष सिधारे, निर्वाण पाये, सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए ।

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

विश्व में हम जिस पृथ्वीपर रहते है, उसके आकार संबंधी उसके उत्पति संबंधी, उसकी स्थिरता अथवा गति संबंधी विविध प्रकार के मंतव्य विविध धर्मो में और आज के विज्ञान में देखने को मिलते है ।

विज्ञान अपने सिद्धान्तो में परिवर्तनशील है । जैन धर्म अपने सिद्धातों में अटल है, दृढ है । विज्ञान के सिद्धान्त प्रयोगों पर आधारित है जब कि जैन धर्म के सिद्धान्त सर्वज्ञ (अनंत ज्ञानी) भगवंतो के कहे हुए है । शाश्वत पदार्थो में कभी भी फर्क संभवित नहीं है, अशाश्वत पदार्थ सतत परिवर्तनशील होते है ।

ऐसी परिस्थिति में जैन भूगोल क्या कहता है, यह जानने के लिये तुम सब उत्साही हो । तो अपने जंबूद्वीप की जानकारी के विषय में आगे बढेंगे ।

थाली के जैसे गोल जंबुद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक का अंतर ज्यादा से ज्यादा एक लाख योजन है, ऐसे जंबुद्वीप का घेरा, चारों ओर का विस्तार कितना होगा ? इस जंबूद्वीप का क्षेत्रफल आदि क्या है ? परिधि और क्षेत्रफळ कैसे निकाला जाय इसका रहस्य आगे की गाथाओं में बताया है ।

विक्खभं वग्गदहगुण - करणी वट्टस्स परिरओ होइ ।

वक्खंभ पाय गुणिओ, परिरओ तस्स गणिय पयं ।।७।।

व्यास के वर्ग को दस से गुणने से आनेवाले गुणाकार का वर्गमूळ याने वर्तुलाकार वस्तु की **परिधि** अर्थात घेरा है । परिधि को व्यास के ''पाव (१/४)'' भाग से गुणने से वर्तुलाकार वस्तु का **क्षेत्रफल** मिलता है ।

वर्तुलाकार वस्तु की चौडाइ यह उसका **विष्कम्भ**, व्यास अथवा **वृत्तविष्कम्भ** कहा जाता है ।

गोल वस्तु का घेरावा यह उस वस्तु की **परिधि** अथवा **परिवृत** है । किसी भी नाप के समचौरस खंडो से संपूर्ण क्षेत्र का नाप उस वस्तुका **क्षेत्रफळ** अथवा **गणितपद** है ।

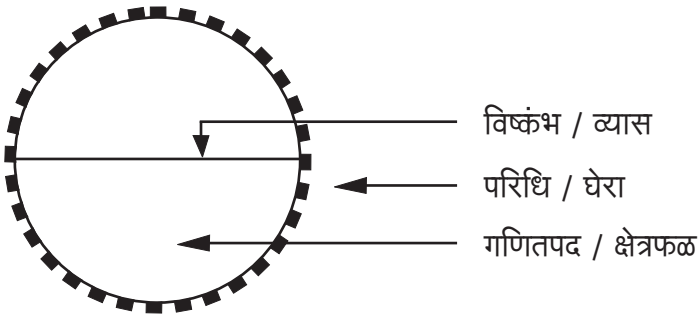

अब उपरोक्त गाथ के आधार पर हमें जंबूद्वीपकी परिधि और क्षेत्रफल निकालना है ।

१) जंबुद्वीप की परिधि

परिधि = व्यास ^{२} X १० = आनेवाली संख्या का वर्गमूल ($\sqrt{\ }$ यह वर्गमूल का चिन्ह है)

= व्यास X व्यास X १० $\sqrt{\ }$

= १००००० X १००००० X १० $\sqrt{\ }$ = $\sqrt{१००००००००००}$

वर्गमूल याने किसी भी समान दो संख्या के गुणाकार वाली संख्या की मूल संख्या ।

उदाहरणार्थ :- ४ = २ X २ चार संख्याका वर्गमूल **२** है ।

४९ = ७ X ७ उनपचास का वर्गमूल **७** है ।

१४४ = १२ X १२ एकसो चौवांलीस का वर्गमूल **१२** है ।

वर्गमूल निकालने की पध्दती :-

१) विषम आकडों के उपर । ऐसी निशानी करें, सम आकंडो पर --- ऐसी निशानी करें ।

२) वर्गमूल निकालने के लिए भागाकार में दो संख्या टुकडों टुकडो से उतारनी होती है । (कारण वर्गमूल स्वयं से गुणा हुआ रहता है ।)

३) विषम संख्या हो वहाँ एकही संख्या से वर्गमूल खोजा जाता है ।

४) वर्गमूल की संख्या खोजने का मूल गणित निम्नानुसार है -

भाजक + भागाकार x १० + नया भागाकार = नक्की हुआ नया भाजक x नये भागाकार की संख्या

भाजक = याने भाग गिरानेवाली संख्या

भागाकार = गिरे हुए भाग बतानेवाली संख्या

अब हम उपरोक्त (१००००००००००) रकम का वर्गमूल निकालकर देखें -

$$\begin{array}{r} 316227 \\ \sqrt{1,0|00|00|00|00|00} \end{array}$$

0 + 3 = 3 × 3	→ −9 ; 100
+ 3 = 6 × 10	
+ 1 = 61 × 1	→ −61 ; 3900
+ 1 = 62 × 10	
+ 6 = 626 × 6	→ −3756 ; 14400
+ 6 = 632 × 10	
+ 2 = 6322 × 2	→ −12644 ; 175600
+ 2 = 6324 × 10	
+ 2 = 63242 × 2	→ −126484 ; 4911600
+ 2 = 63244 × 10	
+ 7 = 632447 × 7	→ −4427129 ; 484471 शेष
+ 7 = ध्रुव भाजक 632454	

$$316227 \frac{484471}{632454}$$ योजन

316227 ↓ पूर्ण योजन ; $\frac{484471}{632454}$ ↓ अपूर्ण योजन

अपूर्ण योजन को चार से गुणने से 'गाऊ' आयेंगे

$$\frac{484471}{632454} \times \frac{4}{1} = \frac{1937884}{632454} = 3 \frac{40522}{632454}$$ गाऊ

अपूर्ण गाऊ को २००० से गुणने से 'धनुष्य' आयेंगे

$$\frac{405220}{632454} \times \frac{2000}{1} = \frac{81044000}{632454} = 128 \frac{44944}{316227}$$ धनुष्य

अपूर्ण धनुष्य को चार से गुणने से 'हाथ' आयेंगे

$$\frac{44944}{316227} \times \frac{4}{1} = \frac{179776}{316227}$$ **हाथ**

हाथ को २४ से गुणने से 'अंगुल' आयेंगे

$$\frac{179776}{316227} \times \frac{24}{1} = \frac{1438208}{105409} = 13 \frac{67891}{105409}$$ **अंगुल**

जंबुद्वीप की परिधि - ३,१६,२२७ योजन, ३ गाऊ, १२८ धनुष्य. १३।। अंगुल से अधिक

परिही तिलक्ख - सोलस - सहस्स दो य सय सत्तवीसहिया ।
कोसतिगट्ठावीसं, धणुसय तेरंगुलद्धहियं ।।८।।

परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताइस योजन से तीन गाऊ, एकसो अट्ठाईस धनुष्य और तेरह अंगुलसे अधिक है ।

उसकी पूरी गिनती हमने कर ली है । उससे भी सूक्ष्म बुद्धि है उन्होंने यव, युका, लिख, वालाग्र, रथरेणु, त्रसरेणु, बादर परमाणु, सूक्ष्म खंड बादर परमाणु, सूक्ष्मतरखंड बादर परमाणु तक की गिनती कर शेष ५४ आये तब तक की गिनती करनी चाहिये ।

उपरोक्त गणितद्वारा परिधि निकाली है, अब क्षेत्रफल कैसे निकाले यह देखेंगे ।

श्रावक - दिनकृत्य धर्म-जागरीका

श्रावक नवकारमंत्र स्मरण के साथ जागृत होवे और फिर नवकारमंत्र का ध्यान करे और ध्यान से निवृत्त होकर धर्म-जागरिका करें । यह ''धर्म जागरिका'' आनंद - कामदेव आदि परमात्मा महावीरस्वामी के श्रावक करते थे और ''धर्म जागरिका'' करते हुए श्रावक योग्य प्रतिमा वहन की विचारणा पाकर महान लाभ को पाये थे । धर्म-जागरिका श्रावक को करने योग्य कर्तव्य है ।

धर्म-जागरिका में श्रावक क्या करता है ? यह बात समझाते हुए कहते है धर्म-जागरिका में नीचे बताया है, उस के अनुसार चिंतन करें ।

कोइं का मम जाई, किं च कूले देवयाच के गुरुणा, को मह धम्मो के वा, अभिग्गहा का अवथ्था में ।।१।।
किमक्कडं किच्च मकिच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं नसमायरामि ।।
किं में परोपासइ किं च अप्पा, किं वा खलिअं न विवज्जयामि ।।२।।

मैं कौन हूँ ? मेरी जाति कौनसी है ? मेरा कुल कौनसा है ? मेरे देव कौन है ? मेरा धर्म कैसा है ? मेरे अभिग्रह, नियम, पच्चक्खाण क्या है ? मैने क्या करना चाहिये ? मै ने क्या नहीं करना चाहिये ? क्या मैने किया नहीं ? क्या मुझे करने का बाकी है ? क्या मैं कर्तव्य निभाने में समर्थ हूँ ? कुछ कर सकुं ऐसा नहीं हूँ ? क्या मै और मेरे ज्ञानी भगवंत मेरे पाप को जानते नहीं ? अब मैं उन पापों से मुक्त होने का प्रयत्न करता हूँ ।

इस प्रकार गहराई से चिंतन करते आत्मा सावधान बनता है । खुद के पाप और दोषों का भान होने पर उन्हें त्यागने का प्रयत्न करता है । ग्रहण किये हुए नियमों के पालन में वीर्य को विकसित करता है । एवं नये गुण उपार्जन करने की बुद्धि उत्पन्न होती है ।

उठने के बाद भी नींद उडती न हो तो नासिका बंद कर श्वासोश्वास दबाये, रोके उससे नींद टूटती है । साधु को संबोधित कर ओध निर्युक्ति में कहा है कि -

दव्वाइ उवओगं उस्सास निरुंभणा लोयं ।।

चार घडी रात बाकी हो तब उठा हुआ श्रावक बने वहाँ तक मौन धारण करे, परंतु कदाचित् बोलना पडे तो मंदस्वर में बोले । रात में खाँसना, खँकारना, हुंकार करना आदि करना पडे तो भी अत्यंत धीमे से करना, उँचे आवाज में नहीं करना - क्योंकि ऐसा करने से जागृत हुए छिपकली आदि हिंसक जीव मख्खी इत्यादि जीवों को मारने की क्रिया करते है, पडौसी जागृत हुए तो अपनी आरंभी क्रिया शुरु करते है, पारधी-मच्छीमार, जुगारी, आदि अन्य पापकारी संसारी जागते है । एक एक जागृत होकर अपने आरंभ के कामों में प्रवर्तित हो जाय उससे सबके कारणीक (परंपरा) दोषोंका खुद भागीदार बन बैठता है, उससे अनर्थदंड की प्राप्ति होती है । पापी जागता है तो पापही करता है । वह सोया हुआ ही अच्छा है ।

भगवती सूत्र में कहा है कि-

जागरिया धम्मीणं अधम्मीणं तु सुत्तयासेया । वच्छाहिव भयणीए, अकहिसु जिणो जयंतीए ।।१।।

वच्छदेशकी अधिपति की बहन को भगवंत श्री वर्धमान स्वामीने कहा कि - '' हे जयंती श्राविका, धर्मवंत प्राणियों का जागना और पापी प्राणियों का सोना कल्याणकारी होता है ।''

नींद में से उठते हि जाँचना कि किस तत्वके चलते निंद विच्छेद हुई है । जल और पृथ्वी तत्व में नींद टूटती है तो अच्छा और आकाश,वायु, अग्नि तत्व में निद्रा विच्छेद होती है तो दुःखदायी जानना ।

उँचा पवन चढता है, तब अग्नितत्व, नीचे उतरता है तब जल तत्व, तिर्च्छा पवन बहता है तब वायुतत्व, नासिका के दोनो बाजू पवन चलता है तो पृथ्वीतत्व और सब दिशाओं से पवन फैल जाता है तब आकाशतत्व समझना। ज्यादा गुरुगम से जानना।

अशुभ स्वप्न फल निवारण

अशुभ स्वप्न दो प्रकार के है -

१) कुस्वप्न :- राग याने मोह, माया, लोभ से उत्पन्न हुए कुस्वप्न कहलाते है।

२) दुःस्वप्न :- द्वेष याने क्रोध, मान, इर्ष्या विषाद से उत्पन्न होता है वह दुःस्वप्न कहलाता है।

ये दोनो स्वप्न अपमंगल है अतः उसका फल टालने के लिये निद्रा त्याग कर कायोत्सर्ग करना।

यदि निद्रा में कुस्वप्न देखा हो तो एक सौ आठ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिये। अर्थात् ''सागरवर गंभीरा'' तक चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

यदि नींद में दुःस्वप्न देखा हो तो सौ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सार्ग करना, अर्थात् ''चंदेसु निम्मलयरा'' तक चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिये।

शुभ स्वप्न देखकर फिर सोना नहीं और प्रभात होने पर उत्तम गुरु के पास जाकर स्वप्न कथन करना, अशुभ स्वप्न आये तो तुरंत सो जाना और किसीको कुछ कहना नहीं।

रात्री के पहले प्रहर में स्वप्न देखा हो तो बारह महिने में फल मिलता है। रात्री के दुसरे प्रहर में स्वप्न देखा हो तो छः महिने में फल देता है। तिसरे प्रहर का स्वप्न तीन मासमें फल देता है। चौथे प्रहर का सपना एक माह में फल देता है। रात के पिछले दो घडी में देखा हुआ स्वप्न दस दिन में फल देता है। सुर्योदय के समय का स्वप्न तत्काल फल देता है।

दातुन से मुखशुध्दिकी विधि

श्रावक शरीरशुद्धि करने के पश्चात जिनालय में जाये इस विधि के अंतर्गत शास्त्रकार मुखशुद्धि के लिये दातुन करनेकी विधि बताते हुए कहते है -

दंतदाढ्याय तर्जन्या, घर्षयेत दंतपिठिकां। आदावतः परंकुर्या, दंतधावनमादरात्।।

दांत और दाढोंको दृढ करने के लिये दांतकी पीठिका (मसूडे) सर्वप्रथम तर्जनी-अंगुलीसे घसना फिर आदरपूर्वक दातुन करना।

दातुन का प्रमाण और दातुन करने की रीति

अवक्राग्रंथि सकूर्च, सूक्ष्माग्रं च दशांगुलं। कनिष्ठाग्रसमं स्थौल्यं, ज्ञातवृक्ष्यं सुभूमिजं।।

१) दातुन टेढा नहीं होना चाहिये २) दातुन बिना गांठ का होना चाहिये ३) दातुन का अग्रभाग पतला होना चाहिये ४) उसका कूचा अच्छा होना चाहिये ५) अपने दस उंगलीयोंके लंबाई जितना होना चाहिये ६) अपनी छोटी अंगुली के जितना मोटा होना चाहिये ७) ज्ञात पेड और अच्छी भूमि में उत्पन्न होना चाहिये।

दातुन करनेकी रीत बताते हुए कहते है कि उत्तर अथवा पूर्व दिशा के सामने आसन पर स्थिर होकर दातुन को छोटी अंगुली और अनामिका के बीच रखकर सर्व प्रथम उपर की दाहिनी दाढ फिर उपरकी बायीं दाढ घसना उसके बाद नीचेकी दाहिनी और बायीं दाढ घसना। मौन रहकर दातुन करना। जरुरत हो तो सुखा मंजन नमक अथवा खट्टे पदार्थ से दांत घसना।

व्यतिपात, रविवार, संक्रान्ति के दिन, ग्रहण के दिन, एवं पडवा, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, पूनम, अमावस्या इन छ तिथियोंपर दातुन नहीं करना चाहिये ।

उसी तरह खाँसीका रोगी, श्वासका रोगी, अजीर्ण का रोगी, शोक रोगी, तृषा रोगी, मुखपाक रोगी,मस्तक रोगी, नेत्र रोगी, हृदयरोगी, कर्ण रोगी, इतने रोगवालों को दातुन का निषेध है ।

श्रावक के लिये स्नानविधि

जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं । प्रायो जन्यानुरोधेन, द्रव्यस्नानं तदुच्यते ।।

जल द्वारा क्षणभर के लिये देहदेश की (शरीर के कई भागोंकी) शुद्धि का कारण है उसे द्रव्यस्नान कहा जाता है । ऐसा द्रव्यस्नान श्रावक ने परमात्माकी पूजा के लिये ही करना चाहिये । (अन्यथा नहीं)

भावशुद्धि एवं अनुभव ज्ञान से देखने पर द्रव्यस्नान में अपकाय के जीवों की विराधना का दोष है, परंतु उससे (देव-गुरु पूजासे) जो दर्शन शुद्धि होती है उसके लिये वह महान लाभकारी है ।

यह द्रव्यस्नान करते हुए श्रावकों ने सामन्यतः निम्न लिखित बाबतों का ध्यान रखना चाहिये -

१) स्नान परमात्मपूजा के लिए ही करना २) स्नान परिमित (मर्यादित) जलसे ही करना ३) स्नान के लिये छाना हुआ पानी उपयोग में लेना ४) त्रसादिक जीव रहीत सम पवित्र भूमि पर अचित उष्ण जल से स्नान करना ५) तीर्थस्नान जैनों में मान्य नहीं है । शत्रुंजय नदी में नहाने का व्यवहार है पर उस में उपयोग रखना । ६) नदी के पानी में प्रवेश कर स्नान नहीं किया जा सकता । ७) मलीन लोगों ने मलीन किये हुए एवं अपरिचित अनजान पानी में स्नान न करना ८) सभी वस्त्रों सहित स्नान नहीं होता वैसे ही संपूर्ण वस्त्र रहित होकर भी स्नान नहीं करना ।

द्रव्यस्थान करने के बाद भी जीव हिंसादिक से काया मलीन होती है, असत्य बोलने से मुख मलीन होता है, एवं रागद्वेषादिक के कारण से मन मलीन होता है अतः द्रव्यस्नान करने के बाद भावस्नान द्वारा आत्मा को निर्मल करना ।

भावस्नान

ध्यानांभस्यानुजीवस्य, सदा यच्छुद्धिकारणं । मलम् कर्म समाश्रित्य, भावस्नानं तदुच्यते ।।

ध्यानरुप जल से जीव को जो सदा शुद्धि का कारण बने और जिसका आश्रय लेकर कर्मरुपी मैल धोया जाय उसे भावस्नान कहते है ।

एक कुलपुत्र गंगाप्रमुख तीर्थ करने जाता है । माता पुत्र के साथ एक तुंबडी देती है और हर तीर्थ में तुंबडी को स्नान कराने की हिदायत देती है । कुलपुत्र कई दिनों के बाद तीर्थयात्रा कर वापिस आता है । माता को नमस्कार कर तुंबडी देते हुए कहता है कि ''सभी तीर्थो में मेरे साथ स्नान कराया है ।'' माताने उसी तुंबडी की सब्जी बनायी । बेटा भोजन करने बैठा । सब्जी मुँह में डाल ते ही थू थू करने लगा । माता पूछती है, क्यों क्या हुआ ?, बेटा कहता है ''माँ, यह तुंबडी कितनी कडवी है ''। माता कहती ''ऐसा कैसा हो सकता है ? इतने तीर्थस्नान कराये फिर भी तुंबडी कडवी कैसे हो सकती है ?'' तूने तीर्थस्नान कराया ही नहीं होगा ।''

बेटा कहता है ''नहीं माँ मै ने सभी जगह इसे स्नान कराया है । फिर भी इसकी कटुता न गई ? ''

इसी तरह द्रव्यस्नान करने के बाद भावस्नान का लक्ष्य चूक गये तो आत्मिक शुद्धि नहीं पा सकते ।

चलो हम द्रव्यस्नान कर परमात्मा की द्रव्यपूजा करते करते भाव की विशुद्धि पायें जिससे अनादि के मोह के सस्कार पतले हो, आंशिक वीतरागता प्रकटे और कर्मरुपी मैल दूर होकर आत्मा निर्मल बने ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

श्रुतज्ञान के २० भेद

पज्जय - अक्खर-पय-संघाया पडिवत्ती तह य अणुओगो ।

पाहुड-पाहुड-पाहुड-वत्थु पुव्वा य स समासा ।।७।।

गाथार्थ - समास सहित पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत, वस्तु और पूर्व (इस तरह श्रुत के २० भेद होते है)

१) पर्याय श्रुत २) पर्याय समास श्रुत ३) अक्षर श्रुत ४) अक्षर समास श्रुत ५) पदश्रुत ६) पद समास श्रुत ७) संघात श्रुत ८) संघात समास श्रुत ९) प्रतिपत्ति श्रुत १०) प्रतिपत्ति समास श्रुत ११) अनुयोग श्रुत १२) अनुयोग समास श्रुत १३) प्राभृत -प्राभृत श्रुत १४) प्राभृत प्राभृत समास श्रुत १५) प्राभृत श्रुत १६) प्राभृत समास श्रुत १७) वस्तु श्रुत १८) वस्तु समास श्रुत १९) पूर्व श्रुत २०) पूर्व समास श्रुत

समास का अर्थ - अधिक, समुदाय, संग्रह अथवा विस्तार को समास कहते है ।

१) पर्याय श्रुत - श्रुतज्ञान का सबसे सूक्ष्म भाग, जिसका केलवज्ञानी की दृष्टि में दो विभाग न हो सके उसे पर्याय कहते हैं । सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्ता निगोद के जीवों को उत्पति के समय जो अल्प श्रुत ज्ञान होता है, उससे अन्य जीव का एक पर्याय बढे वह पर्याय श्रुत कहलाता है ।

२) पर्यायसमास श्रुत - सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्ता निगोद के जीवों को जो श्रुतज्ञान होता है उसमें दो, तीन, आठ, दस अथवा इससे अधिक पर्यायो वाला ज्ञान पर्याय समास श्रुत कहलाता है ।

३) अक्षर श्रुत - 'अ' कारादिक अक्षरों में से एक अक्षर का ज्ञान अक्षर श्रुत कहलाता है ।

४) अक्षर समास श्रुत - दो, तीन या अधिक अक्षरों का ज्ञान अक्षर समास श्रुत कहलाता है ।

५) पद श्रुत - सामान्य से ऐसा कहा जाता है कि ''जहाँ अर्थ पर्ण हो वह पद'' अथवा विभक्ति जिसके अंत में हो वह पद ''

अर्थ परिसमाप्तिः पदम । विभक्त्यन्तं पदम् ।

परंतु यहाँ दोनो अर्थ नहीं लेना है । आचारांग सूत्र का मान १८००० (अठ्ठारह हजार) पद कहा गया है, उसका **पद** यहाँ लेना है, ऐसे एक पद का ज्ञान वह **पदश्रुत** ।

६) पदसमास श्रुत - ऐसे दो, तीन या अधिक पदों का ज्ञान वह **पदसमास श्रुत** ज्ञान कहलाता है ।

तत्वों की विचारणा करने के लिये किये गये द्वारो (विभाग) को मार्गणा कहते है । मूल मार्गणा १४ हैं, उसके उत्तरभेद ६२ हैं ।

७) संघात श्रुत - कोई भी तत्व की एक मार्गणा के एक उत्तर भेद का ज्ञान वह **संघात श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

८) संघात समास श्रुत - एक से ज्यादा परंतु मार्गणा के उत्तर भेदों से एक भेद कम का ज्ञान वह **संघात समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

९) प्रतिपत्तिश्रुत - चौदह मार्गणा में से एक संपूर्ण मार्गणा का ज्ञान वह **प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

१०) प्रतिपत्ति समास श्रुत - दो या दो से अधिक मार्गणा का ज्ञान वह **प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

''सत-पद पुरवणय'' सतपद प्ररुपणा, द्रव्य प्रमाण वगैरे अनुयोग कहलाते है - जिससे वस्तु या तत्व की सूक्ष्म विचारणा हो सके ।

११) अनुयोग श्रुत - ऐसे एक अनुयोग का ज्ञान वह **अनुयोग श्रुत ज्ञान** कहलाता है ।

१२) अनुयोग समास श्रुत - ऐसे एक से अधिक अनुयोग का ज्ञान **अनुयोग समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

द्वादशांगी में १२ अंग हैं । बारहवां अंग दृष्टिवाद है । दृष्टिवाद में पांच मुख्य अधिकार है.- १) परिकमी २) सूत्र ३) पूर्वानुयोग ४) पूर्वगत और ५) चूलिका चौथे पूर्वगत अधिकार में १४ पूर्व का समावेश होता है ।

एक-एक पूर्व में अलग अलग १४-१४ अधिकार हैं, उस एक एक अधिकार को **वस्तु** कहते हैं ।

एक-एक वस्तु में अलग अलग २० अधिकार हैं, उस एक एक अधिकार को **प्राभृत** कहते हैं ।

एक-एक प्राभृत मे २०-२० लघु प्रकरण हैं । उसमें अलग अलग विषयो की चर्चा है उस एक एक लघु प्रकरण को **प्राभृत - प्राभृत** कहते हैं ।

१३) प्राभृत - प्राभृत श्रुत - एक प्राभृत-प्राभृत का ज्ञान वह **प्राभृत - प्राभृत श्रुत ज्ञान** कहलाता है ।

१४) प्राभृत - प्राभृत समास श्रुत - दो से उन्नीस प्राभृत - प्राभृत का ज्ञान वह **प्राभृत - प्राभृत समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

१५) प्राभृत श्रुत - एक प्राभृत का ज्ञान वह **प्राभृत श्रुतज्ञान** कहलाता हैं ।

१६) प्राभृत समास श्रुत - दो से उन्नीस प्राभृत का ज्ञान वह **प्राभृत समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

१७) वस्तु श्रुत - एक वस्तु का ज्ञान वह **वस्तुश्रुत ज्ञान** कहलाता है ।

१८) वस्तु समास श्रुत - दो से तेरह वस्तु का ज्ञान वह **वस्तु समास श्रुत ज्ञान** कहलाता है ।

१९) पूर्वश्रुत - एक पूर्व का ज्ञान वह **पूर्व श्रुत ज्ञान** कहलाता है ।

२०) पूर्व समास श्रुत - दो से १४ पूर्व का ज्ञान वह **पूर्व समास श्रुतज्ञान** कहलाता है ।

अवधिज्ञानादि भेद

अनुगामि - वड्ढमाणय - पडिवाई - इयर विहा छ हा ओही ।

रिउ - मइ विउल - मई, मण-नाण केवलमिग - विहाणं ।।८ ।।

गाथार्थ :- अवधिज्ञान के अनुगामी, वर्धमान और प्रतिपाती रुप तीन भेद होते हैं, तथा उनके प्रतिपक्षी तीन भेद (अननुगामी, हीयमान एवं अप्रतिपाती) होने से वह छह प्रकार का है । ऋजुमति एवं विपुलमति रुप मनः पर्यवज्ञान के दो भेद हैं तथा केवलज्ञान एक भेद वाला ही हैं ।

अवधिज्ञान

इंद्रियो और मन की सहायता के बिना मर्यादा में रहे हुए रुपी पदार्थों का बोध आत्मा को करने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिज्ञान के दो भेद है -

१. भवप्रत्ययिक - देवता और नारकी को होता है । अनुगामी, अप्रतिपाति और अवस्थित होते हैं , बाकी के नहीं होते ।

२) गुणप्रत्ययिक - मनुष्य और तिर्यंच को होता है तथा छः प्रकार का होता है ।

१. अनुगामी अवधिज्ञान - जहाँ अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ हो वहाँ से अन्य जगह जाने पर भी वह चक्षु (आँख) के समान साथ ही रहता है वह अनुगामी ।

२. अननुगामी अवधिज्ञान - जहाँ अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ हो वहाँ आये तभी यह ज्ञान रहता है, दूसरे स्थान पर जाये तब आत्मा का अनुगमन नहीं करता अर्थात वहाँ साथ नहीं आता, वह अननुगामी अवधिज्ञान है । यहाँ क्षेत्र प्रत्ययी क्षयोपशम है । यह अवधिज्ञाान लोह-शृंखला से बंधे दीपक के समान है, जो नियत क्षेत्र में ही प्रकाश करता है ।

३. वर्धमान अवधिान - ज्यादा से ज्यादा जलतन डालने से अग्नि बढता है उसी प्रकार आत्मा के अध्यवसाय उत्तरोत्तर ज्यादा विशुद्ध होते जाने से अवधिज्ञान बढता है । उत्पन्न होता है तब अंगुल के असंख्यातवे भाग क्षेत्र को जाने, बढते बढते अलोकाकाश में भी लोकाकाश प्रमाण असंख्य खंडुक देखने की शक्ति से युक्त हो जाता है । समय समय पर बढे वह वर्धमान अवधिज्ञान कहलाता है ।

४. हियमान अवधिज्ञान - उत्पन्न हो तब शुभ परिणाम के कारण ज्यादा हो परंतु अशुभ - अशुद्ध अध्यवसाओं के कारण लगातार घटता जाये वह हियमान अवधिज्ञान है ।

५. प्रतिपाती अवधिज्ञान - संख्याता - असंख्याता योजन, उत्कृष्ट से संपूर्ण लोक मे स्थित रुपी द्रव्यों को देखकर भी अचानक नष्ट हो जाता , चला जाता है वह प्रतिपाती अवधिज्ञान है ।

विभंगज्ञान मिथ्यात्वी को होता है, इससे वह मलीन है । भाव से उल्टा सीधा जाने देखे परंतु वह अवधिज्ञान का ही प्रकार है ।

६. अप्रतिपाती अवधिज्ञान - संपूर्ण लोक को देखे, अलोक के एक प्रदेश को देखे, जो आने के पश्चात जाए नहीं वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान कहलाता है ।

धीरे धीरे घटता जाये वह हियमान.... अचानक एक साथ चला जाये वह प्रतिपाति जानना ।

विभंगज्ञान मिथ्यात्वी को होता है, इससे वह मलीन है । भाव से उल्टा सीधा जाने देखे परंतु वह अवधिज्ञान का ही प्रकार है ।

मनःपर्यवज्ञान

ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मनोभावो को जिस ज्ञान के द्वारा जाना जाता है, उसे **मनःपर्यव ज्ञान** कहते है । मनःपर्यवज्ञान के दो भेद हैं - १) ऋजुमति २) विपुलमति

१. ऋजुमति - सामान्य से मन के अध्यवसाय को जाने वह **ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान** कहलाता है । उदा. इस बहन ने घडा सोचा है ।

२. विपुलमति :- विशेष रुप से मन के अध्यवसाय जाने वह **विपुलमाति मनःपर्यवज्ञान** कहलाता है । उदा. इस बहन ने लाल, मिट्टी का अहमदाबादी घडा सोचा है ।

केवलज्ञान

जिस ज्ञान के द्वारा सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल, सर्वभाव को एकसाथ जाना जाता है उसे केवलज्ञान कहते हैं ।

केवल ज्ञान का एक ही प्रकार है ।

केवलज्ञान को शास्त्र में शुद्ध, सकल, असाधारण, अनंत, निर्व्याघात और एक भी कहने में आया है ।

१. केवल शुद्धम् तदावरणापगमात् : कर्म के आवरण सर्वथा दूर हो गये है इसलिये **शुद्ध** ।

२. सकलं वा केवलम् , तत्प्रथमतयैव निःशेष तदावरणाविगमतः संपूर्णोत्पत्ते । - उत्पन्न होते ही सब कुछ जाने इसलीये **सकल** ।

३. असाधारणं वा केवलम् , अनन्यसदृशत्वात् । इसके समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं इसलिये **असाधारण** ।

४. अनन्तं वा केवलम् ज्ञेया नन्ततत्वाद अनन्तकालावस्थायित्वा द्वा । अनन्त वस्तु बताता है और अनंतकाल रहने वाला है इसलिये **अनंत** ।

५. निर्व्याघातं वा केलवम् , लोके लोके वा प्रसत्तौ व्याघाताभावात् । व्याघात बिना का याने आंतरे बिना का इसलिये **निर्व्याघात** ।

६. तथा, केवलम् - एकम् , मत्यादि चतुष्करहितत्वात् । मतिज्ञान वगैरह चार ज्ञान रहित है इसलिये एक । केवलज्ञान क्षायिकभाव का है । मति वगैरह चार ज्ञान क्षायोपशमिक भाव के हैं । इससे केवलज्ञानी को चार ज्ञान नहीं होते । एक ही केवलज्ञान होता है ।

एसिं जं आवरणं पडुव्व चक्खुस्स तं तया ऽऽ वरणं ।
दंसण - चउ पण-निद्दा वित्ति समं दंसणा ऽऽ वरणं ।।९।।

गाथार्थ :- ज्ञानावरणीय कर्म चक्षु पर बंधी हुई पट्टी के समान है । पांचो ज्ञानो को आवृत करने वाले वे-वे आवरण उस उस ज्ञान के आवरणीय कर्म कहलाते हैं । द्वारपाल के समान कहलाने वाले दर्शनावरणीय कर्म की दर्शन चतुष्क एवं निद्रा पंचक रुप नौ प्रकृतिया होती हैं ।

मतिज्ञान को ढांके अथवा आवरण करे वह मतिज्ञानावरणीय कर्म ।
श्रुतज्ञान को ढांके अथवा आवरण करे वह श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म ।
अवधिज्ञान को ढांके अथवा आवरण करे वह अवधिज्ञानावरणीय कर्म ।
मनःपर्यवज्ञान को ढांके अथवा आवरण करे वह मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म ।
केवलज्ञान को ढांके अथवा आवरण करे वह केवलज्ञानावरणीय कर्म ।

विरति वाटिका

मृषावाद विरमण व्रत

उच्च गति की ओर प्रयाण करना है.....

परम पद की प्राप्ति करनी है.....

तो हे साधक ! जैसे सम्यग् दर्शन को पाना और निर्मल करना आवश्यक है.... हिंसा को छोडकर अहिंसा से जीवन का शृंगार जरुरी है..... वैसे ही साधना के मार्ग पर गति करने अपने वचनो को सत्य से शृंगारित करना अनिवार्य है ।

राजा हरीशचंद्र आज भी जिंदा है, उनके सत्य वचन के कारण । श्रावक को भी पाँच अणुव्रतो के अन्तर्गत दूसरे अणुव्रत में असत्य का त्याग कर सत्य को स्वीकार करने की सलाह देने में आयी है ।

असत्यमप्रत्यमूल कारणं, कुवासनासद्मसमृद्धि वारणम् ।
विपत्तिदानं परवञ्चनोर्जितं, कृता पराधं कृतिभिर्विवर्जितम् ।।

अविश्वास का मूल कारण.... खराब वासनाओ का निवासस्थान..... समृद्धिओं के निवारण में अर्गला समान..... विपत्तिओ का मूल हेतु..... अन्य लोगो को ठगने में अतिदक्ष एवं अपराधो के खजाने समान ऐसे असत्य वचन ज्ञानी पुरुषो द्वारा सर्वधा त्याग किये हुए है ।

तुम असत्य वचन बोलोगे तो एक बार कोई उसे मानेगा.... दूसरी तीसरी बार भी मान लेगा पर फिर तो उसे पक्का निश्चित हो जायगा कि तुम्हारे वचन विश्वास करने योग्य नहीं है । तात्कालिक लाभ हो जायेगा परंतु अंत में तो वो हानि पहुँचाने वाला ही है । असत्य में से ही अनेक अयोग्य वासना निर्माण होती है, सारे अयोग्य कार्य असत्य के साथ ही जुडे हुए व बंधे हुए है । असत्य का आश्रय लेने से शायद सामग्री या समृद्धि की प्राप्ति हो भी जाय तो वह कभी भी टिकती नहीं है । सारी विपत्तियाँ असत्य में से ही उत्पन्न होती है । सत्य सदा सर्वदा एवं सर्वत्र निर्भय होता है । असत्य सदा-सर्वदा-सर्वत्र भयभीत रहता है.... अनेको को ठगने के द्वारा माया-कपट से अपनी आत्मा को ही ठगकर दुर्गति के तरफ ले जाता है । जीवन में एकबार असत्य मजबूत बन जाय यानि अन्य सारे अपराध....गुनाह....दुष्कृत्य आकर अड्डा जमाकर बैठ जाते है ।

हे जीव ! ऐसे असत्य के भरोसे तू अनादिकाल से तेरी जीवन नैया दौडाता आया है, इस असत्य के कटु परिणाम भी तूने अनेक बार भोगे है, फिर भी तेरी आंख खुली ही नहीं है । ऐसे दुर्गति के दूत समान असत्य को छोडने का तूने कभी भी गंभीर प्रयास नहीं किया है । जाग जा ! श्रावक जीवन को याद कर ले । परमात्मा द्वारा प्ररुपित देशविरति को पाने का असत्य का साथ छोड.... सत्य के मार्ग पर दौड जा, तेरा कल्याण हो जायेगा..... आओ ! उपासक दशांग में प्रभुजी द्वारा बताये गये एवं गणधरो द्वारा समझाये गये इस व्रत को, इसके अतिचारो को एवं अर्थ को समझने का प्रयास करे ।

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमणव्रत वो झूठ बोलने से अटकना वो मृषावाद विरमणव्रत पांच प्रकार से है ।

१) कन्यालीक - जो निर्दोष कन्या हो उसे सदोष कहे और सदोष कन्या हो उसे निर्दोष कहे और अन्य भी द्विपद के बारे में झूठ बोलना वो सर्व इसमें आता है ।

२) गवालीक - थोडा दूध देने वाली गाय को बहुत दूध देने वाली बताना और बहुत दूध देने वाली गाय को कम दूध देने वाली बताना, इसी तरह अन्य भी चतुष्पद के बारे में झूठ बोलना यह सब इसके अन्तर्गत आता है ।

३) भुम्यालिक - भूमि संबंधित झूठ बोलना, परायी भूमि को खुद की बताना तथा द्रव्यादिक संबंध में झूठ बोलना ।

४) न्यासापहार (नासावहारे) - अमानत संबंधित झूठ, परायी वस्तु अमानत के रुप में रखकर बाद में उसका अपहरण करना कि मैने तो अमानत रखी ही नहीं है ।

५) झूठी साक्षी - द्वेष से अथवा रिश्वत लेकर गलत साक्षी देना, झूठा झगडा खडा करना, विश्वासघात करना ।

ये पांच बडे झूठ बोलने के नियम, वो स्थूल से नियम है । ये पांच झूठ अपनी आत्मा के हेतु तथा सगे संबंधी, सज्जन आदि के लिये तथा धर्म के लिये इतने स्थानको पर झूठ बोलने की जयणा रखना । हो सके तब तक श्रावक को झूठ बोलना ही नहीं चाहिये पर मजबूरी में कुछ कम ज्यादा बोलना पडे तो उसकी जयणा रखे पर अन्य किसी के लिये पांच बडे झूठ बोलने का नियम किया हुआ है, परंतु सूक्ष्म झूठ बोलना पडे तो उसकी जयणा है । हास्य आदि बात विनोद में अथवा किसी निमित्त से कषाय आदि के कारण आत्मा मूढ चेतना में रहते हुए कुछ आडा-तेडा बोला जाय या आजीविका के निमित्त से अपने परिणाम की कमतरता से कोई दुष्ट मनुष्य दुःख देता हो और उसके दुःख में से छूटने के लिये उस अपराधी को दंडित करने के लिये कुछ कम ज्यादा बोलना पडे तो उसका आगार (छूट) रखे, परतु जो बोलने से दंड भरना पडे तथा जीभ, कान, नाक, हाथ आदि छेदित हो या राजदरबार में दंडित होना पडे, ऐसी भाषा तो श्रावक नाम धारण करके कभी भी बोले नहीं । इस दूसरे व्रत में **१) सहसात्कार -** बिना विचार किये किसी पर आरोप लगाना (२) **रहस्याख्यान -** कोई एकांत में व्यक्तिगत गुप्त बात करता हो तो उन्हें तुम राज के विरुद्ध मंत्रणा कर रहे हो ऐसा कहना (३) **स्वदारा मंत्रभेद -** स्त्री द्वारा कही गयी व्यक्तिगत बात अन्य से कहना (४) **मृषा उपदेश -** गलत उपदेश देना (५) **कुटलेख -** गलत दस्तावेज, लेख नामे, खत लिखना ये पांच अतिचार दोष दूसरे व्रत में लगाना नहीं ।

दूसरा अणुव्रत एवं उसके अतिचार को जानने के बाद हम यह व्रत स्वीकारने तैयार होते है, इस व्रत को स्वीकारने के लिये हमें ऐसी प्रतिज्ञा लेने की होती है **''मैं कन्या संबंधित, पशु संबंधित, जमीन संबंधीत, अमानत संबंधीत एवं कोर्ट की साक्षी में कभी भी झूठा बोलूंगा नहीं । ''**

इस व्रत की विशेष शुद्धि एवं आत्मा की निर्मलता के लिये हमें निम्न नियम सहायक बनते है -

१) मैं प्रतिदिन एक / दो / तीन घंटे मौन व्रत रखुंगा । २) मै किसी को अपशब्द गाली नहीं दूंगा । ३) मैं आवेश में आकर किसी का अपमान नहीं करुंगा ४) मैं किसी की गुप्त बात जाहिर नहीं करुंगा ५) मैन किसी पर कलंक या आरोप नहीं लगाऊंगा । ६) मैं कभी भी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करुंगा । ७) मैं किसी को गलत सलाह नहीं दूंगा । ८) मैं झूठे दस्तावेज लिखूंगा नहीं, लिखवाऊंगा नहीं । ९) मैं झूठे लेख लिखूंगा नहीं, लिखवाऊंगा नहीं । १०) मैं व्यापार और व्यवहार में झूठ बोलुंगा नही । ११) मैन सांसारिक लाभ के लिये झूठ बोलुंगा नहीं । १२) मैं नौकर-चाकर संबंधित झूठ बोलुंगा नहीं । १३) मैं बच्चों को स्कुल,कॉलेज में दाखिल करवाने झूठ नहीं बोलुंगा ।

१४) मैं रेल्वे आदि की टिकिट के पैसे बचाने झूठ बोलुंगा नहीं । १५) मैं बुजुर्गो की मजाक, मस्ती करने या एप्रिल फूल बनाने झूठ नहीं बोलुंगा ।

अदत्तादान विरमणव्रत

असत्य को जीवन में से भगाकर हम कुछ हल्के हुए.... कुछ निर्मल बने । नहीं.... इतने से तो संतोष नहीं मानने का है, हमें तो आगे और आगे ही बढने का है, मानव का भव आत्मशुद्धि के लिये ही मिला है । दूसरे मृषावाद विरमणव्रत के बाद श्रावक के लिये आता है ''स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत'' जो मेरा नही है.... जो मेरा अधिकार या हक का नहीं है, उसके उपर मेरी सत्ता जमाऊंगा वो अदत्तादान है, जिसे सामान्य भाषा में चोरी कही जाती है, शास्त्र चोरी के लिये क्या बताते है ? जान लेते है -

यन्निर्वर्तितकिर्तिधर्मनिधानं, सर्वागमां साधनं, प्रोन्मीलद्धधबन्धनं विरचित, क्लिष्टाशयोद्धोधनम् ।
दौर्गत्यैकनिबंधनं कृतसुग - त्याश्लेषसंरोधनम्, प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृक्षति न त-द्वीमानसदत्तं धनम् ।।

जो चोरी का धन है, वो प्रसिद्ध ऐसी कीर्ति एवं संपत्ती का नाश करता है । उसी तरह सर्व दुःखो का साधन, वध तथा बंधन को प्रकृट करने वाला, क्लिष्ट आशयो को प्रकृट करने वाला तथा संग्राम आदि का भय उपजाने वाला है, ऐसे अदत्त द्रव्य को ग्रहण करने की कौन बुद्धिमान इच्छा करेगा ? अर्थात किसी को नहीं करना चाहिये ।

घोर, अतिघोर नरक में ले जाने वाले सात व्यसनो में जिसका समावेश होता है, ऐसी चोरी क्या श्रावक कुल में जन्मे हुए हमारे जीवन में हो सकती है...? नहीं...नहीं ही होनी चाहिये..... परंतु प्रभु के बताये अदत्तादान विरमणव्रत का विचार करे और अपने जीवन उपर एक नजर डाले तो खयाल आता है कि जाने-अन्जाने में संपत्ती के मोह में फंसे हुए हम कभी नहीं करने जैसे अकार्य कर बैठते है, नहीं करने जैसे पाप से हमारे हाथ लिप्त हो जाते है ।

अज्ञान अवस्था में हो चुके पापो की क्षमा मांगी जा सकती है, परंतु जानबूझकर यदि हम पापो की परम्परा को आगे चलाते एवं बढाते ही रहेंगें, प्रभुजी ने बताये मार्ग को पाकर अपने अकार्यो की तरफ आंखे मूंदकर ही रहेंगे तो परिणाम जो आना चाहिये वो ही आयेगा, यह जीवन भी हमारी भवभ्रमणा को घटाने के बदले बढाने वाला ही साबित होगा ।

चेतन ! ऐसी समझदारी पुण्योदय से ही प्राप्त होती है, ऐसी समझदारी पाकर चुकना मत, किसी ने सच ही कहा है -

अवसर बेर बेर नहि आवे..... ज्युं जाने त्युं करले भलाई,
जन्म जनम सुख पावे..... अवसर बेर.....

तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत को एवं उसके अतिचार तथा अर्थविस्तार को समझकर जीवन मे अपनाने सज्ज बन जा ।

संपूर्ण रुप से साधु को द्रव्यभाव से अदत्त का त्याग होता है और श्रावक तो सचित·अचित (सजीव-अजीव) ऐसी किसी की रह गयी, पडी हुई, भूली हूई वस्तु लें नहीं तथा किसी की नजर चूकाकर ले नहीं, इसी

तरह रास्ते चलते किसी को लूटे नहीं, घर फोडकर चोरी करे नहीं, इसी तरह राज-निग्रह यानि राज्य की ओर से दंड हो, जेल हो, फांसी की सजा हो ऐसा पराया धन या माल, मालिक के दिये बिना लेना नहीं । व्यवहार नियोग यानि व्यापार प्रमुख में जो कर (टेक्स) लेने का नियम राजा आदि ने रखा है उसमें अपनी आजीविका के बारे में जो कर देने की या कम कर भरने से दाणचोरी,करचोरी होती है उसकी जयणा रखे । तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार शुद्ध करे जिससे निवृत हो, ये पांच अतिचारो के नाम - स्तेनाहृत, तस्करप्रयोग, विरुद्ध राज्यातिक्रम, कूटतूला, कूटमापा, तत्प्रतिरुपक व्यवहार अतिचार ।

प्रथम स्तेनाहृत अतिचार - स्तेन यानि चोर उसने अन्य देश से या देशान्तर प्रमुख से अपहरण करके लायी ऐसी केसर प्रमुख बहुमूल्य वस्तु जो चोरी हुई है, ऐसा जानने के बाद भी सस्ते भाव में मिल रही है, जानकर लोभ के वश से कुछ धन आदि देकर वो वस्तु खरीदी हो वो प्रथम स्तेनाहृत नामक अतिचार जानना ।

दूसरा तस्कर प्रयोग :- चोर को चोरी करने की प्रेरणा देना, चोर को संबल वगैरह देना, चोर को चोरी करने के ठिकाने बताना, चोरी वगैरह करने के लिये लोहे के हथियार आदि विशेष देना और खुद आगे होकर चोर द्वारा चोरी गयी वस्तुये बेचे, बिकवा दे वो दूसरा तस्कर प्रयोग अतिचार जानना ।

तीसरा विरुद्धरज्जाइकम्मे :- यानि अपने राजा के विरुद्ध जो राज्य उसमें अतिक्रमण करना अर्थात राजाज्ञा हो कि अमुक राजा मेरा शत्रु है उनके देश में जाकर किसी ने भी व्यापार की दृष्टि से कोई चीज लेना नहीं और कोई चीज बेचना नहीं, इसके बावजुद उस राजाज्ञा का भंग करके वो काम करना वो तीसरा विरुद्धराज्यातिक्रम नामक अतिचार जानना ।

चौथा कुडतुल्ल कुडमाणे - यानि कूडे तोल कुडे माप (गलत तोलमाप) करना, तथा करके रखना यानि तौलने के बाट (किलो वगैरह) तथा अनाज वगैरह मापने की पायली (बर्तन) आदि, वस्त्र मापने के गज, मीटर इत्यादि गलत रखना, अन्य के पास से माल लेते वक्त अधिक तोल माप से लेना एवं दूसरो को माल देते वक्त आडा-तेडा तोलकर देना जैसे लेते वक्त पायली (माप का बर्तन) उपर तक भर कर लेते है और देते वक्त थोडा कम भर कर देना । झूठे माप-तौल करे यानि झूठ बोलकर काट-कूट दगाबाजी कर कांटा तौलने का तराजू वो गलत कर के रखे हो तथा उसमें बीच में से उपर उठाकर रखा हो, डंडी में अंतरकोण रखे तथा उंची-नीची पैर से दबा कर रखे, जिससे तौलते वक्त स्वयं को फायदा होता हो इस तरह से करे वो कुडतुल कुडमाणे अतिचार जानना ।

पांचवा तत्प्रतिरुपक व्यवहार अतिचार :- बहुमूल्य चीज हो उसके जैसी ही दूसरी हल्की चीज बनाकर बहुमूल्य कह बेचने का व्यापार करना । अच्छी वस्तु उसमें उसके सद्रश्य दूसरी खराब या हल्की वस्तु मिलाकर उस अच्छी वस्तु के मूल्यानुसार बेचना, घी-तेल वगैरह में मिलावट की हो, किसी को नयी वस्तु दिखाकर उसका भाव कर बाद में पुरानी वस्तु तौलकर दी हो तथा कूड करहा यानि खेत में बोवनी करने के वक्त किसी के पास से धान्य लेकर उसके साथ ठराव करे कि धान्य पकने के बाद मैं डेढ गुना या दोगुना दूंगा, फिर जब फसल पके तब कहे कि मैने तो सवाया ही देने का ठराव किया था इत्यादि कूडा करहा निकाला हो तथा किसी को ठगा हो, द्रोह किया हो, किसी के साथ विश्वासघात किया हो, नामे लिखने मे किसी के साथ छल किया हो, झूठी

मुद्रा (मुहर-छाप) चलायी हो, किसी के खेत में से तैयार ज्वार, तैयार चने उठा लिये हो, किसी के साथ व्यापार करते हुए उसका द्रव्य (धन) अपने पास भूल से रह गया हो तो वो उसे वापस नहीं दिया हो, तथा नाणे (रुपियो) की उलट पुलट की हो यानि असली नाणो को पलटा कर नकली चलाये हो ।

तीसरे अदत्तादान विरमणव्रत का स्वीकार करने हमें ऐसी प्रतिज्ञा करने की होती है **'' मैं पैसे, गहनो की, जेब काटकर, तिजोरी तोडकर, घर फोडकर चोरी नहीं करुंगा ।''**

लिये हुए पच्चकखाण के सुंदर पालन के लिये नीचे के नियम हमें सहायता करते है -

१) मैं पैसे, गहने, अनाज, पुष्प आदि की चोरी नहीं करुंगा ।
२) मैं माल में मिलावट नहीं करुंगा ।
३) मैं झूठे तौल-माप नहीं रखुंगा ।
४) मैं चोरी का माल नहीं लुंगा ।
५) मैं चोरी का माल नहीं बेचुंगा ।
६) मैं रिश्वत नहीं दूंगा ।
७) मैन रिश्वत नहीं लुंगा ।
८) मैं रास्ते पर पडी हुई वस्तु नहीं उठाऊंगा ।
९) मैं बिना टिकिट के सफर नहीं करुंगा ।
१०) मैं सिक्का नहीं लगी हुई डाक टिकिट दूसरी बार नहीं उपयोग में लाऊंगा ।
११) मैं करचोरी नहीं करुंगा ।
१२) मैं बिजली की चोरी नहीं करुंगा ।
१३) मैं छोटी-बडी किसी की वस्तु चोर कर लुंगा नहीं, बदलाऊंगा नहीं ।